RJPP, Vol. XXIV, No.I, Oct.25-Mar.26, ISSN (P) : 0976-3635, (e) :2454-3411
Impact Factor 8.873

भारतीय चुनावी प्रक्रिया का निगमीकरणः चुनावी बांड में पारदर्शिता का संकट

शुभम् शेखर श्रीवास्तव
शोध छात्र,
मानविकी एंव सामाजिक, राजनीति विज्ञान
श्री राम स्वरूप मेमोरियल यूनिवर्सिटी
बाराबंकी लखनऊ
ईमेलः shubham555ji@gmail.com

डॉ अनिल कुमार
सहायक प्राध्यापक
मानविकी एंव सामाजिक, राजनीति विज्ञान
श्री राम स्वरूप मेमोरियल यूनिवर्सिटी
बाराबंकी लखनऊ

सारांष

यह शोध पत्र भारतीय चुनावी प्रक्रिया में निगमीकरण की प्रक्रिया का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें चुनावी बांड योजना (2018–2024) को मुख्य केंद्र बनाया गया है। योजना की शुरुआत को पारदर्शिता तथा काले धन को समाप्त करने के रूप में प्रस्तुत किया गया था, किंतु यह वास्तव में गुमनाम तथा असीमित कॉर्पोरेट दान को वैध बनाकर राजनीतिक वित्तपोषण में कॉर्पोरेट प्रभाव को बढ़ावा देने वाली सिद्ध हुई। योजना के दौरान कुल 16,500 करोड़ रुपये से अधिक के बांड बेचे गए, जिनमें से लगभग 94 प्रतिशत कॉर्पोरेट संस्थाओं से प्राप्त हुए तथा सत्ताधारी दल को असमान लाभ मिला। इससे क्रोनी कैपिटलिज्म, क्विड प्रो क्वो व्यवस्थाएं तथा मतदाताओं के सूचना के अधिकार (अनुच्छेद 19(1)(क)) का हनन हुआ। सर्वोच्च न्यायालय ने 15 फरवरी 2024 के ऐतिहासिक फैसले (Association for Democratic Reforms v. Union of India, 2024 INSC 113) में योजना को असंवैधानिक घोशित किया तथा गुमनाम दान को लोकतंत्र की मूलभूत संरचना के विरुद्ध माना। इस फैसले ने राजनीतिक योगदान में गोपनीयता को मतदाताओं के सूचना के अधिकार से नीचे रखा तथा असीमित कॉर्पोरेट दान को अनुच्छेद 14 के विरुद्ध ठहराया। इस फैसले के बाद प्रकटीकरणों ने कई संदिग्ध लेन–देन उजागर किए, किंतु चुनावी ट्रस्टों के माध्यम से कॉर्पोरेट फंडिंग का प्रवाह जारी रहा, जो पारदर्शिता के संकट की निरंतरता दर्शाता है।

प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से चुनावी बांड योजना ने भारतीय लोकतंत्र को धनबल पर आधारित बनाने का प्रयास किया तथा पूर्ण पारदर्शिता तथा समानता सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य वास्तविक समय प्रकटीकरण, दान पर सीमाएं तथा राज्य द्वारा सार्वजनिक वित्तपोषण जैसे व्यापक सुधार आवश्यक हैं। बिना इन सुधारों के भारतीय चुनावी प्रक्रिया में निगमीकरण तथा पारदर्शिता का संकट बना रहेगा, जो लोकतंत्र की जन–केंद्रित प्रकृति के लिए गंभीर खतरा है।

Reference to this paper should be made as follows:
Received: 25-02-26
Approved: 12-03-26

शुभम् शेखर श्रीवास्तव
डॉ अनिल कुमार

भारतीय चुनावी प्रक्रिया का निगमीकरणः चुनावी बांड में पारदर्शिता का संकट

RJPP Oct.25-Mar.26,
Vol. XXIV, No. I,
Article No. 19
Pg. 177-186

Online available at:
https://anubooks.com/journal-volume/rjpp-mar-2026-vol-xxiv-no1--270

https://doi.org/10.31995/rjpp.2026.v24i01.019

मुख्य बिन्दु

चुनावी बांड, निगमीकरण, राजनीतिक वित्तपोषण, पारदर्शिता संकट, क्रोनी कैपिटलिज्म, क्विड प्रो क्वो, मतदाताओं का सूचना अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय फैसला, चुनावी ट्रस्ट, लोकतंत्र सुधार

प्रस्तावना

लोकतंत्र की मूलभूत संरचना में राजनीतिक वित्तपोषण की पारदर्शिता अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है, क्योंकि यह चुनावी प्रक्रिया की निष्पक्षता और स्वतंत्रता सुनिश्चित करती है तथा जनता का विश्वास बनाए रखने में सहायक होती है। भारत जैसे विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में राजनीतिक धन के स्रोतों की गोपनीयता लंबे समय से एक गंभीर चुनौती रही है, जहां काले धन, भ्रष्टाचार तथा कॉर्पोरेट प्रभाव की प्रवृत्तियों ने लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रभावित किया है (गुप्ता, 2020)। वर्ष 2018 में चुनावी बांड योजना की शुरुआत को सरकार ने राजनीतिक चंदे में पारदर्शिता लाने तथा नकदी आधारित भ्रष्टाचार को कम करने के उपाय के रूप में प्रस्तुत किया था, किंतु अनेक विश्लेषकों के अनुसार यह योजना राजनीतिक प्रक्रिया के निगमीकरण को बढ़ावा देने वाली सिद्ध हुई, क्योंकि इसके माध्यम से असीमित एवं गुमनाम कॉर्पोरेट दान संभव हो गए तथा मतदाताओं के सूचना के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा (एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स, 2023)।

चुनावी बांड योजना के तहत भारतीय कंपनियों एवं व्यक्तियों को भारतीय स्टेट बैंक से बांड खरीदकर राजनीतिक दलों को गुमनाम रूप से दान देने की सुविधा प्रदान की गई, जिससे दाता की पहचान सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं होती थी और राजनीतिक दलों को प्राप्त धन का स्रोत भी सार्वजनिक नहीं होता था। इस व्यवस्था ने कॉर्पोरेट क्षेत्र को राजनीतिक प्रक्रिया में अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप करने का अवसर दिया, जिससे क्रोनी कैपिटलिज्म तथा क्विड प्रो क्वो जैसी प्रवृत्तियों की आशंका बढ़ी (भट्टाचार्य, 2021)। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के आंकड़ों के अनुसार, योजना की अवधि में कुल बांड बिक्री का लगभग 94 प्रतिशत हिस्सा कॉर्पोरेट संस्थाओं से आया, जो चुनावी प्रक्रिया में निगमीकरण की गहराई को दर्शाता है (एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स, 2023)।

इस योजना की संवैधानिक वैधता पर भी गंभीर प्रश्न उठे, क्योंकि इसे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अंतर्गत मतदाताओं के सूचना के अधिकार के उल्लंघन के रूप में देखा गया। लोकतांत्रिक व्यवस्था में मतदाता को यह जानने का अधिकार है कि किस राजनीतिक दल को कौन सी संस्था या व्यक्ति धन प्रदान कर रहा है, ताकि वह सूचित निर्णय ले सके और संभावित प्रभावों का आकलन कर सके (राजगोपाल, 2019)। योजना के समर्थकों ने दाता की गोपनीयता और प्रतिशोध से सुरक्षा का तर्क दिया, जबकि आलोचकों ने इसे चयनात्मक पारदर्शिता का उदाहरण बताया, क्योंकि राज्य बैंक के माध्यम से सरकार को दाताओं की जानकारी उपलब्ध रहती थी (चौधरी, 2022)।

सर्वोच्च न्यायालय ने 15 फरवरी 2024 को अपने ऐतिहासिक निर्णय में (Association for Democratic Reforms v. Union of India, 2024) चुनावी बांड योजना को असंवैधानिक घोषित करते हुए संबंधित विधायी संशोधनों को निरस्त कर दिया। मुख्य न्यायाधीश डी. वाई. चंद्रचूड़ की अध्यक्षता वाली संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से यह माना कि गुमनाम राजनीतिक दान मतदाताओं के सूचना के अधिकार का उल्लंघन करते हैं तथा लोकतंत्र की बुनियादी संरचना को कमजोर करते हैं। न्यायालय

ने यह भी स्पष्ट किया कि राजनीतिक योगदान से संबंधित जानकारी मतदाताओं को सूचित निर्णय लेने में सहायक होती है तथा असीमित कॉर्पोरेट दान से नीति निर्माण में पक्षपात की संभावना बढ़ती है (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)।

यह शोध पत्र चुनावी बांड योजना के माध्यम से भारतीय चुनावी प्रक्रिया में हुए निगमीकरण का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें योजना की संरचना, कार्यान्वयन प्रक्रिया, प्रमुख आलोचनाओं, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय तथा उसके लोकतांत्रिक व्यवस्था पर प्रभावों की विस्तृत पड़ताल की जाएगी। साथ ही, राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता के संकट को दूर करने हेतु आवश्यक नीतिगत सुधारों पर भी विचार किया जाएगा, ताकि भारतीय लोकतंत्र अपनी समावेशी, उत्तरदायी और निष्पक्ष प्रकृति को बनाए रख सके (शर्मा, 2021)।

राजनीतिक वित्तपोषण का ऐतिहासिक संदर्भ

भारत में राजनीतिक वित्तपोषण का इतिहास स्वतंत्रता के बाद से ही पारदर्शिता, काले धन तथा कॉर्पोरेट प्रभाव की जटिल चुनौतियों से जुड़ा रहा है। प्रारंभिक दशकों में राजनीतिक दलों को धन मुख्यतः निजी दान, सदस्यता शुल्क तथा स्वैच्छिक योगदान से प्राप्त होता था, किंतु स्पष्ट नियामक ढांचे की कमी के कारण वित्तीय अनियमितताओं तथा भ्रष्टाचार की प्रवृत्तियां बढ़ती गईं (शर्मा, 2021)। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 ने चुनावी व्यय पर सीमाएं निर्धारित कीं तथा उम्मीदवारों के खर्च की निगरानी का प्रावधान किया, परंतु राजनीतिक दलों के कुल वित्तपोषण को नियंत्रित करने के लिए कोई सख्त तंत्र नहीं बनाया गया, जिससे वित्तीय पारदर्शिता सीमित रही (कुमार, 2020)।

1956 में कंपनी अधिनियम लागू होने के साथ कंपनियों द्वारा राजनीतिक दलों को दान देना वैधानिक रूप से संभव हुआ, जिससे कॉर्पोरेट क्षेत्र का राजनीतिक प्रक्रिया में प्रवेश बढ़ा। हालांकि, 1960 के दशक में कॉर्पोरेट दान के प्रभाव तथा भ्रष्टाचार की आशंकाओं के कारण 1969 में इंदिरा गांधी सरकार ने कंपनी अधिनियम में संशोधन कर कंपनियों द्वारा राजनीतिक दान पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। इस कदम का उद्देश्य राजनीति और व्यवसाय के बीच अनुचित गठजोड़ को रोकना था, किंतु इसके परिणामस्वरूप राजनीतिक दलों ने अप्रत्यक्ष माध्यमों से धन संग्रह करना शुरू किया, जिससे काले धन का प्रवाह बढ़ा (Association for Democratic Reforms, 2024)।

1980 के दशक में राजनीतिक वित्तपोषण की समस्याएं बढ़ने पर 1985 में कंपनी अधिनियम में संशोधन कर कॉर्पोरेट दान पर लगे प्रतिबंध को हटा दिया गया तथा कंपनियों को अपने पिछले तीन वर्षों के औसत शुद्ध लाभ का 5 प्रतिशत (बाद में 7.5 प्रतिशत) तक दान देने की अनुमति दी गई। साथ ही, कंपनियों को अपने खातों में दान का विवरण तथा लाभार्थी दल का उल्लेख करने की बाध्यता भी लगाई गई। हालांकि, [1] 20,000 से कम दान पर रिपोर्टिंग छूट तथा कमजोर प्रवर्तन के कारण अधिकांश धन अज्ञात स्रोतों से आता रहा, जिससे पारदर्शिता सीमित रही (गुप्ता, 2020)। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के अनुसार 2004–05 से 2022–23 तक प्रमुख राजनीतिक दलों की आय का बड़ा हिस्सा अज्ञात स्रोतों से प्राप्त हुआ, जो राजनीतिक वित्तपोषण में संरचनात्मक पारदर्शिता संकट को दर्शाता है (Association for Democratic Reforms, 2024)।

1990 के दशक में चुनाव सुधारों पर विभिन्न समितियों ने महत्वपूर्ण सुझाव दिए। इंद्रजीत

गुप्ता समिति (1998) ने राज्य द्वारा चुनावी वित्तपोषण की सिफारिश की तथा समान अवसर सुनिश्चित करने पर बल दिया। भारतीय विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट (1999) ने भी चुनावी कानूनों में व्यापक सुधार तथा राज्य वित्तपोषण की आवश्यकता को रेखांकित किया, किंतु इन सिफारिशों का प्रभावी क्रियान्वयन सीमित रहा (राजगोपाल, 2019)।

2010 के दशक तक राजनीतिक दलों के लगभग 70 प्रतिशत से अधिक धन अज्ञात स्रोतों से प्राप्त होता रहा, जिसने चुनावी प्रतिस्पर्धा में असमानता तथा नीति निर्माण पर प्रभाव की संभावना को बढ़ाया। इसी पृष्ठभूमि में 2017–18 में चुनावी बांड योजना की शुरुआत हुई, जिसे पारदर्शिता बढ़ाने के उपाय के रूप में प्रस्तुत किया गया, किंतु आलोचकों के अनुसार इसने गुमनाम कॉर्पोरेट दान को संस्थागत रूप दिया तथा राजनीतिक प्रक्रिया के निगमीकरण को बढ़ावा दिया (Supreme Court of India, 2024)।

इस प्रकार, भारत में राजनीतिक वित्तपोषण का ऐतिहासिक विकास प्रतिबंध, उदारीकरण तथा पारदर्शिता की कमी के चक्र से होकर गुजरा है, जिसमें कॉर्पोरेट प्रभाव तथा काले धन की समस्या निरंतर बनी रही। सर्वोच्च न्यायालय के 2024 के निर्णय ने इस संकट को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हुए राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता और जवाबदेही की आवश्यकता को पुनः स्थापित किया (Supreme Court of India, 2024)।

आलोचनाएँः निगमीकरण तथा पारदर्शिता का संकट

चुनावी बांड योजना की सबसे प्रमुख आलोचना यह रही कि इसने भारत की चुनावी प्रक्रिया के व्यावसायीकरण को तीव्र गति प्रदान की तथा राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता के संकट को और गहरा कर दिया। इस योजना के माध्यम से कंपनियों को असीमित तथा गुमनाम रूप से राजनीतिक दलों को धन देने की अनुमति प्राप्त हुई, जिससे निजी व्यावसायिक संस्थाओं का राजनीतिक प्रक्रिया पर अप्रत्यक्ष प्रभाव बढ़ गया और लोकतंत्र की समानता तथा निष्पक्षता पर गंभीर प्रभाव पड़ा। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के आंकड़ों के अनुसार योजना की अवधि में कुल बिक्री का लगभग 94 प्रतिशत भाग कंपनियों से प्राप्त हुआ तथा कुल राजनीतिक धन का लगभग 56 प्रतिशत चुनावी बांडों के माध्यम से आया, जो यह दर्शाता है कि चुनावी प्रक्रिया बड़े औद्योगिक समूहों पर अत्यधिक निर्भर हो गई थी (एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स, 2024)।

इस योजना ने पक्षपातपूर्ण पूंजीवाद को बढ़ावा दिया, जिसमें दान देने वाली कंपनियां राजनीतिक दलों को भारी धनराशि देकर बदले में नीतिगत लाभ, सरकारी ठेके, जांच में राहत या अनियमितताओं पर अनदेखी की अपेक्षा करती रहीं। अनेक उदाहरणों में यह देखा गया कि जिन कंपनियों पर प्रवर्तन एजेंसियों या कर विभाग की जांच चल रही थी, उन्होंने चुनावी बांड खरीदे और बाद में उन्हें राहत मिली, जिसे आम बोलचाल में "चंदा दो, धंधा लो" की प्रवृत्ति का नया रूप माना गया (पूला, 2025)। आलोचकों ने इसे वैध रूप से स्वीकृत भ्रष्टाचार की संज्ञा दी, क्योंकि गुमनाम दान से पारस्परिक लाभ की संभावना बढ़ गई तथा नीतिनिर्माण में निजी हितों का प्रभाव अधिक स्पष्ट हो गया (अल जज़ीरा, 2024)।

पारदर्शिता का संकट इस योजना की संरचना में ही अंतर्निहित था। यद्यपि इसे पारदर्शिता बढ़ाने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया था, किंतु दाता की पहचान केवल भारतीय स्टेट बैंक के पास

सुरक्षित रहती थी, जो सरकारी नियंत्रण में है। इससे आंशिक पारदर्शिता की स्थिति उत्पन्न हुई, जिसमें सत्ताधारी दल को दाताओं की जानकारी उपलब्ध हो सकती थी और इसका उपयोग दबाव या अनैच्छिक दान के लिए किया जा सकता था। विपक्षी दलों और नागरिक समाज संगठनों ने तर्क दिया कि मतदाताओं को यह जानने का मौलिक अधिकार है कि कौन सी संस्था या व्यक्ति किस राजनीतिक दल को धन प्रदान कर रहा है, ताकि वे संभावित प्रभावों का आकलन कर सूचित मतदान कर सकें। यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अंतर्गत सूचना के अधिकार का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)।

भारत के निर्वाचन आयोग तथा भारतीय रिजर्व बैंक ने भी योजना लागू होने से पहले गंभीर चिंताएं व्यक्त की थीं। निर्वाचन आयोग ने 2017 में सरकार को चेतावनी दी थी कि यह योजना राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता को समाप्त कर देगी तथा विदेशी या काल्पनिक कंपनियों के माध्यम से प्रभाव की संभावना बढ़ाएगी (सुप्रीम कोर्ट ऑब्जर्वर, 2024)। भारतीय रिजर्व बैंक ने भी धन शोधन तथा विदेशी वित्तपोषण के जोखिमों पर चिंता व्यक्त की थी। योजना के कारण राजनीतिक दलों को प्राप्त दान का विवरण सार्वजनिक करने की बाध्यता समाप्त हो गई, जिससे मतदाता और जनता वास्तविक जानकारी से वंचित रह गए तथा चुनावी प्रतिस्पर्धा में असमानता बढ़ गई। छोटे दलों और स्वतंत्र उम्मीदवारों के लिए यह स्थिति विशेष रूप से प्रतिकूल सिद्ध हुई, क्योंकि बड़े व्यावसायिक दान मुख्यतः सत्ताधारी दलों को ही प्राप्त होते रहे।

सर्वोच्च न्यायालय ने 15 फरवरी 2024 के अपने ऐतिहासिक निर्णय में इन आलोचनाओं को स्वीकार करते हुए योजना को असंवैधानिक घोषित किया तथा स्पष्ट किया कि असीमित और गुमनाम कॉर्पोरेट दान मतदाताओं के सूचना के अधिकार का उल्लंघन करते हैं और लोकतंत्र की बुनियादी संरचना को कमजोर करते हैं (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)। न्यायालय ने यह भी माना कि राजनीतिक वित्तपोषण से संबंधित जानकारी मतदाताओं को सूचित निर्णय लेने में सहायक होती है तथा गुमनाम दान से नीतिनिर्माण में पक्षपात और भ्रष्टाचार की संभावना बढ़ जाती है। इस प्रकार चुनावी बांड योजना न केवल व्यावसायीकरण का माध्यम बनी, बल्कि पारदर्शिता के संकट को इतना गहरा कर गई कि लोकतांत्रिक व्यवस्था की विश्वसनीयता पर गंभीर प्रश्न खड़े हो गए।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णयः एक ऐतिहासिक मोड़

एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 15 फरवरी 2024 को एक ऐतिहासिक तथा सर्वसम्मत निर्णय सुनाया, जिसमें चुनावी बांड योजना को असंवैधानिक घोषित किया गया। मुख्य न्यायाधीश डी. वाई. चंद्रचूड़ की अध्यक्षता वाली पाँच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने यह माना कि यह योजना मतदाताओं के सूचना के अधिकार का उल्लंघन करती है तथा लोकतंत्र की मूल संरचना को कमजोर करती है। यह निर्णय भारतीय चुनावी प्रक्रिया में पारदर्शिता और निष्पक्षता की पुनर्स्थापना की दिशा में एक महत्वपूर्ण चरण सिद्ध हुआ (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)।

न्यायालय ने तीन प्रमुख आधारों पर इस योजना को असंवैधानिक ठहराया। प्रथम, गुमनाम राजनीतिक दान मतदाताओं के सूचना के अधिकार, जो संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अंतर्गत

संरक्षित है, का उल्लंघन करते हैं। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मतदाता को यह जानने का मौलिक अधिकार है कि राजनीतिक दलों को धन किस स्रोत से प्राप्त हो रहा है, क्योंकि यह जानकारी उन्हें सूचित मतदान करने तथा संभावित पारस्परिक लाभ व्यवस्थाओं का आकलन करने में सहायक होती है। मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने अपने निर्णय में कहा कि राजनीतिक योगदान दाताओं को नीतिनिर्माण में पहुंच और प्रभाव प्रदान करते हैं, जो लोकतांत्रिक समानता को प्रभावित कर सकते हैं (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)।

द्वितीय, कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 182 में 2017 के वित्त अधिनियम द्वारा किए गए संशोधन, जिसके अंतर्गत कंपनियों द्वारा असीमित राजनीतिक दान की अनुमति दी गई तथा दान के विवरण के प्रकटीकरण की बाध्यता समाप्त कर दी गई, को न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 14 के विपरीत माना। न्यायालय ने कहा कि असीमित निजी दान निश्पक्ष चुनाव के सिद्धांत के विरुद्ध है, क्योंकि इससे आर्थिक शक्ति रखने वाले व्यक्तियों या संस्थाओं को नीतिनिर्माण में असमान लाभ प्राप्त हो सकता है। यह व्यवस्था स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों की अवधारणा के अनुरूप नहीं है (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)।

तृतीय, न्यायालय ने योजना में निहित आंशिक पारदर्शिता की समस्या को रेखांकित किया। यद्यपि दाता की गोपनीयता का तर्क प्रस्तुत किया गया था, किंतु भारतीय स्टेट बैंक के पास दाता की जानकारी उपलब्ध रहती थी और सरकार को इसकी पहुंच संभव थी। इससे सत्ताधारी दल को अनुचित लाभ मिलने तथा दानदाताओं पर दबाव पड़ने की संभावना बढ़ जाती थी। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि राजनीतिक वित्तपोषण में गोपनीयता को मतदाताओं के सूचना के अधिकार से ऊपर नहीं रखा जा सकता (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)।

निर्णय के परिणामस्वरूप न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश जारी किए–

- चुनावी बांड योजना को तत्काल प्रभाव से समाप्त किया जाए तथा भविष्य में कोई नया बांड जारी न किया जाए।
- भारतीय स्टेट बैंक को 12 अप्रैल 2019 से 15 फरवरी 2024 तक जारी सभी बांडों का पूरा विवरण, जिसमें दाता का नाम, दान की राशि तथा प्राप्तकर्ता राजनीतिक दल का नाम शामिल हो, निर्वाचन आयोग को सौंपने का आदेश दिया गया।
- निर्वाचन आयोग को निर्देश दिया गया कि प्राप्त जानकारी को अपनी आधिकारिक वेबसाइट पर 13 मार्च 2024 तक सार्वजनिक किया जाए।

यह निर्णय केवल चुनावी बांड योजना को समाप्त करने तक सीमित नहीं था, बल्कि इसने राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता की आवश्यकता को संवैधानिक स्तर पर स्थापित किया। न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णयों, जैसे एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (2002) तथा पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ (2003), का उल्लेख करते हुए पुनः दोहराया कि मतदाताओं का सूचना का अधिकार लोकतंत्र का अभिन्न अंग है तथा राजनीतिक धन के स्रोतों की जानकारी इसी अधिकार के अंतर्गत आती है (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)।

यह निर्णय भारतीय लोकतंत्र में एक महत्वपूर्ण सुधार का संकेतक बना, क्योंकि इससे निजी आर्थिक प्रभाव और गुमनाम धन के दुरुपयोग पर अंकुश लगाने की दिशा में मजबूत कदम उठाया

गया। हालांकि योजना के समाप्त होने के बाद भी चुनावी न्यासों के माध्यम से धन का प्रवाह जारी रहा, जिससे पारदर्शिता का संकट पूरी तरह समाप्त नहीं हो सका। इसके बावजूद वर्ष 2024 का यह निर्णय चुनाव सुधारों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में स्थापित हुआ और भविष्य में अधिक उत्तरदायी तथा पारदर्शी राजनीतिक वित्तपोषण व्यवस्था की आवश्यकता को और अधिक बल प्रदान किया (एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स, 2024)।

भारतीय लोकतंत्र तथा राजनीतिक वित्तपोषण पर प्रभाव

चुनावी बांड योजना ने भारतीय लोकतंत्र तथा राजनीतिक वित्तपोषण की संरचना पर गहरा और बहुआयामी प्रभाव डाला, जिसने पारदर्शिता की कमी, निजी आर्थिक प्रभाव तथा पक्षपातपूर्ण पूंजीवाद की प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया। योजना की अवधि (2018–2024) के दौरान राजनीतिक वित्तपोषण का स्वरूप उल्लेखनीय रूप से बदल गया, जहां कुल राजनीतिक धन का लगभग 56 प्रतिशत चुनावी बांडों के माध्यम से प्राप्त हुआ तथा 94 प्रतिशत से अधिक हिस्सा निजी व्यावसायिक संस्थाओं से आया। इससे सत्ताधारी दल को असमान लाभ प्राप्त हुआ और छोटे दलों तथा स्वतंत्र उम्मीदवारों की स्थिति कमजोर हुई, जो लोकतंत्र की समानता तथा निष्पक्षता के सिद्धांतों के प्रतिकूल है (एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स, 2024)।

इस योजना ने पक्षपातपूर्ण पूंजीवाद को प्रोत्साहित किया, जिसमें दान देने वाली कंपनियां भारी धनराशि देकर बदले में नीतिगत लाभ, सरकारी अनुबंध, जांच में राहत अथवा अनियमितताओं पर अनदेखी की अपेक्षा करती रहीं। अनेक उदाहरणों में यह देखा गया कि जांच के दायरे में आने वाली कंपनियों ने बांड खरीदने के बाद राहत प्राप्त की, जिसे वैध रूप से स्वीकृत भ्रष्टाचार और पारस्परिक लाभ व्यवस्था का संकेत माना गया। सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने निर्णय में स्पष्ट किया कि राजनीतिक योगदान दाताओं को नीतिनिर्माण में विशेष पहुंच प्रदान करते हैं, जो आगे चलकर प्रभाव में परिवर्तित हो जाती है और लोकतंत्र के लिए गंभीर चुनौती उत्पन्न करती है (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)। इस प्रकार योजना ने आर्थिक शक्ति के माध्यम से लोकतंत्र को ऐसी व्यवस्था की ओर अग्रसर किया, जहां संपन्न हित समूह राजनीतिक परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं (पूला, 2025)।

लोकतंत्र पर प्रभाव का एक प्रमुख पक्ष मतदाताओं के सूचना के अधिकार का हनन रहा। गुमनाम दान के कारण मतदाता यह जानने में असमर्थ रहे कि कौन सी संस्था या व्यक्ति किस राजनीतिक दल को धन प्रदान कर रहा है, जिससे सूचित मतदान तथा संभावित प्रभावों का आकलन कठिन हो गया। इससे चुनावी प्रक्रिया की निष्पक्षता प्रभावित हुई तथा बड़े पैमाने पर धन के उपयोग के माध्यम से प्रचार अभियानों के विस्तार और मतदाताओं को प्रभावित करने की प्रवृत्ति मजबूत हुई। योजना ने राजनीतिक प्रतिस्पर्धा में असंतुलन को भी बढ़ाया, क्योंकि सत्ताधारी दल को अधिकांश वित्तीय संसाधन प्राप्त होते रहे और छोटे दल हाशिए पर चले गए (पूला, 2025)।

वर्ष 2024 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात राजनीतिक वित्तपोषण में कुछ सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिले। योजना को असंवैधानिक घोषित किए जाने तथा बांडों के विवरण सार्वजनिक किए जाने से पारदर्शिता में वृद्धि हुई और जनता को दानदाताओं तथा प्राप्तकर्ताओं की जानकारी प्राप्त हुई। इससे पारस्परिक लाभ से जुड़े मामलों की जांच की मांग बढ़ी तथा

मतदाताओं के सूचना के अधिकार को संवैधानिक रूप से और अधिक सुदृढ़ता प्राप्त हुई। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि राजनीतिक वित्तपोषण में गोपनीयता को लोकतांत्रिक पारदर्शिता से ऊपर नहीं रखा जा सकता (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)।

इसके बावजूद निर्णय के बाद भी अनेक चुनौतियां बनी रहीं। चुनावी बांड के समाप्त होने के पश्चात भी धन का प्रवाह चुनावी न्यासों के माध्यम से जारी रहा, जहां निजी दान अपेक्षाकृत गुमनाम बने रहते हैं और पारदर्शिता सीमित है। उपलब्ध आंकड़ों से संकेत मिलता है कि प्रमुख न्यासों से सत्ताधारी दल को अत्यधिक धन प्राप्त होता रहा, जिससे पक्षपातपूर्ण पूंजीवाद तथा असमानता की समस्या बनी हुई है। यह स्पष्ट करता है कि केवल योजना का समाप्त होना पर्याप्त नहीं है, बल्कि राजनीतिक वित्तपोषण में व्यापक सुधारों की आवश्यकता है, जैसे वास्तविक समय में अनिवार्य प्रकटीकरण, दान की सीमा निर्धारण तथा राज्य द्वारा सार्वजनिक वित्तपोषण की व्यवस्था (अल जज़ीरा, 2026; फ्रंटलाइन, 2026)।

समग्र रूप से देखा जाए तो चुनावी बांड योजना ने भारतीय लोकतंत्र की पारदर्शिता और संतुलन को कमजोर किया तथा राजनीतिक वित्तपोषण को निजी आर्थिक प्रभाव के अधीन कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय एक महत्वपूर्ण सुधारात्मक कदम अवश्य सिद्ध हुआ, किंतु पूर्ण पारदर्शिता और समानता सुनिश्चित करने के लिए व्यापक संरचनात्मक सुधार आवश्यक हैं, ताकि लोकतांत्रिक प्रक्रिया धनबल के बजाय जनता की इच्छा और सहभागिता पर आधारित रह सके।

फैसले के बाद के विकास

सर्वोच्च न्यायालय के 15 फरवरी 2024 के ऐतिहासिक निर्णय के पश्चात चुनावी बांड योजना के समाप्त होने से राजनीतिक वित्तपोषण की व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन अवश्य आया, किंतु पारदर्शिता का संकट पूर्णतः समाप्त नहीं हो सका। न्यायालय के निर्देशानुसार भारतीय स्टेट बैंक ने सभी बांडों का विवरण निर्वाचन आयोग को सौंपा तथा आयोग ने मार्च 2024 तक इन सूचनाओं को सार्वजनिक कर दिया। इन प्रकटीकरणों से अनेक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आए, जिनसे यह स्पष्ट हुआ कि कुल 16,518 करोड़ रुपये के बांडों में से एक बड़े हिस्से का लाभ सत्ताधारी दल को प्राप्त हुआ तथा कई दानदाता कंपनियां जांच एजेंसियों के दायरे में होने के बाद भी दान करती रहीं, जिससे पारस्परिक लाभ तथा दबाव में दान की आशंकाएं मजबूत हुईं (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024; अल जज़ीरा, 2026)।

इन खुलासों के बाद विपक्षी दलों तथा नागरिक समाज संगठनों ने अनेक मामलों में विस्तृत जांच की मांग की, जहां यह आरोप लगाया गया कि दान के पश्चात कुछ कंपनियों को सरकारी अनुबंध, नीतिगत राहत या जांच में नरमी प्राप्त हुई। विभिन्न संगठनों ने "चंदा दो, धंधा लो" तथा दबाव में दान जैसी प्रवृत्तियों को उजागर किया, जिससे राजनीतिक वित्तपोषण में संभावित भ्रष्टाचार की जांच की मांग बढ़ी। यद्यपि 2025–26 तक अनेक मामलों में ठोस कानूनी कार्रवाई सीमित रही, फिर भी सार्वजनिक विमर्श तथा मीडिया चर्चा ने पारदर्शिता की आवश्यकता को निरंतर प्रमुख विषय बनाए रखा (पूला, 2025)।

चुनावी बांड योजना के समाप्त होने के बाद निजी दान का प्रमुख माध्यम चुनावी न्यास बनकर उभरे। चुनावी न्यास योजना, 2013 के अंतर्गत पंजीकृत न्यास कंपनियों तथा व्यक्तियों से धन

प्राप्त कर राजनीतिक दलों को वितरित करते हैं। उपलब्ध आंकड़ों से यह संकेत मिलता है कि पंजीकृत न्यासों द्वारा वितरित धन का बड़ा भाग एक ही दल को प्राप्त होता रहा, जबकि अन्य दलों को अपेक्षाकृत कम हिस्सा मिला। प्रमुख न्यासों द्वारा धन वितरण की प्रवृत्ति से यह स्पष्ट होता है कि निर्णय के बाद भी निजी आर्थिक प्रभाव का असमान वितरण जारी रहा तथा न्यासों के माध्यम से अपेक्षाकृत गुमनाम वित्तपोषण संभव बना रहा, क्योंकि दाताओं की पूरी सूची सार्वजनिक रूप से उपलब्ध नहीं होती (एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स, 2024; फ्रंटलाइन, 2026)।

न्यासों के बढ़ते उपयोग ने पारदर्शिता तथा पक्षपातपूर्ण पूंजीवाद से संबंधित चिंताओं को पुनः जीवित कर दिया। आलोचकों का मत है कि न्यास व्यवस्था कंपनियों को दान देने की ऐसी संरचना प्रदान करती है, जिसमें वास्तविक स्रोत और वितरण का विवरण सीमित रहता है। विभिन्न रिपोर्टों में यह भी संकेत मिला कि जांच के दायरे में आने वाली कंपनियां न्यासों के माध्यम से दान देती रहीं और बाद में उन्हें लाभ प्राप्त हुआ, जिससे यह स्पष्ट होता है कि चुनावी बांड काल की प्रवृत्तियां पूरी तरह समाप्त नहीं हुईं (अल जज़ीरा, 2026)।

इस बीच व्यापक सुधारों की मांग भी तेज हुई। अनेक विशेषज्ञों और संस्थाओं ने राज्य द्वारा सार्वजनिक वित्तपोषण की व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया, जिसमें राजनीतिक दलों को धन उनके मत प्रतिशत या अन्य मानकों के आधार पर राष्ट्रीय कोष से प्रदान किया जाए। इस व्यवस्था से निजी आर्थिक प्रभाव कम हो सकता है तथा सभी दलों को समान अवसर प्राप्त हो सकते हैं। निर्वाचन आयोग तथा अन्य संस्थाओं पर भी यह दबाव बढ़ा कि वे दान पर सीमा निर्धारण, वास्तविक समय में प्रकटीकरण तथा जांच तंत्र को अधिक सुदृढ़ बनाएं (फ्रंटलाइन, 2026)।

समग्र रूप से देखा जाए तो निर्णय के बाद कुछ सकारात्मक परिवर्तन अवश्य दिखाई दिए, किंतु निजी आर्थिक प्रभाव तथा असमान वित्तपोषण की समस्या अभी भी बनी हुई है। चुनावी न्यासों का बढ़ता महत्व यह संकेत देता है कि व्यापक संरचनात्मक सुधारों के बिना राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता का संकट पूरी तरह समाप्त नहीं होगा।

निश्कर्श

चुनावी बांड योजना भारतीय चुनावी प्रक्रिया के व्यावसायीकरण का एक प्रमुख उदाहरण सिद्ध हुई, जिसने गुमनाम तथा असीमित निजी दान के माध्यम से पक्षपातपूर्ण पूंजीवाद, पारस्परिक लाभ व्यवस्था तथा मतदाताओं के सूचना के अधिकार के हनन को बढ़ावा दिया। वर्ष २०१८ से 2024 के बीच इस योजना ने राजनीतिक वित्तपोषण को बड़े आर्थिक हित समूहों के प्रभाव के अधीन कर दिया तथा लोकतंत्र की समानता और निष्पक्षता को गंभीर चुनौती दी। सर्वोच्च न्यायालय के वर्ष 2024 के निर्णय ने इस योजना को असंवैधानिक घोषित करते हुए मतदाताओं के सूचना के अधिकार को सुदृढ़ किया तथा यह स्पष्ट किया कि राजनीतिक योगदान में गोपनीयता को लोकतांत्रिक पारदर्शिता से ऊपर नहीं रखा जा सकता (भारत का सर्वोच्च न्यायालय, 2024)।

निर्णय के पश्चात हुए प्रकटीकरणों तथा चुनावी न्यासों के बढ़ते उपयोग से यह स्पष्ट हुआ कि समस्या की जड़ें गहरी हैं। निजी धन का असमान वितरण तथा संभावित पारस्परिक लाभ की प्रवृत्तियां जारी रहीं, जिससे यह सिद्ध होता है कि केवल एक योजना का समाप्त होना पर्याप्त समाधान

नहीं है। भारतीय लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए राजनीतिक वित्तपोषण में व्यापक सुधार आवश्यक हैं, जैसे अनिवार्य वास्तविक समय प्रकटीकरण, दान की सीमा निर्धारण, निजी दान पर नियंत्रण तथा राज्य द्वारा सार्वजनिक वित्तपोषण की व्यवस्था।

यदि ऐसे सुधार नहीं किए गए तो चुनावी प्रक्रिया आर्थिक शक्ति के प्रभाव में बनी रहेगी और लोकतंत्र जनता की अपेक्षा आर्थिक हितों की ओर अधिक झुक सकता है। चुनावी बांड विवाद ने यह महत्वपूर्ण सबक दिया है कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए पारदर्शिता, समानता और जवाबदेही अनिवार्य हैं। इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर भारतीय लोकतंत्र अपनी समावेशी और जन–केंद्रित प्रकृति को बनाए रख सकता है।

संदर्भ

1. एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स। (2024)। पंजीकृत मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को दान का विश्लेषण (वित्त वर्ष 2016–17 से 2021–22)। उपलब्धः https://adrindia.org
2. भारत का सर्वोच्च न्यायालय। (2024)। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स बनाम भारत संघ, 2024 आईएनएससी ११३। उपलब्धः https://main.sci.gov.in
3. भारत सरकार, वित्त मंत्रालय। (2018)। चुनावी बांड योजना की शुरुआत प्रेस विज्ञप्ति,। भारत सरकार।
4. फ्रंटलाइन। (2026)। चुनावी न्यासः निजी धन और राजनीति। उपलब्धः https://frontline.thehindu.com/the-nation/india-electoral-trusts-political-funding/article70639541.ece
5. पूला, डी। (2025)। चुनावी बांड योजना में भ्रष्टाचार का विश्लेषण। ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज़ कम्युनिकेशंस। उपलब्धः https://www.nature.com/articles/s41599-025-06201-z
6. सुप्रीम कोर्ट ऑब्जर्वर। (2024)। चुनावी बांड योजना की संवैधानिकता। उपलब्धः https://www.scobserver.in/cases/association-for-democratic-reforms-electoral-bonds-case-background
7. अल जज़ीरा। (2024)। भारत की चुनावी बांड व्यवस्थाः कथित भ्रष्ट कंपनियों ने दलों को भुगतान किया और लाभ प्राप्त किया। उपलब्धः https://www.aljazeera.com/news/2024/4/4/indias-electoral-bonds-laundry-corrupt-firms-paid-parties-got-cleansed
8. अल जज़ीरा। (2026)। पारस्परिक लाभ व्यवस्थाः भारतीय कंपनियां उन दलों को धन देती हैं जिनकी सरकारें उन्हें लाभ पहुंचाती हैं। उपलब्धः https://www.aljazeera.com/features/2026/2/18/quid-pro-quo-how-indian-firms-fund-parties-whose-governments-help-them